



2026:AHC: 171217

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

आपराधिक अपील संख्या - 1471/1983

फूल सिंह एवं अन्य

.....अपीलार्थी(गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

.....प्रत्यर्थी(गण)

अपीलार्थी(गण) के अधिवक्ता

: सौम्या चतुर्वेदी, अजय कुमार, धरणीधर पांडेय,
कमल कुमार सिंह, फूल सिंह यादव, पूनम
श्रीवास्तव

प्रत्यर्थी(गण) के अधिवक्ता

: ए.जी.ए.

7.7.2026 को सुरक्षित

14.8.2026 को पारित

न्यायालय संख्या - 93

माननीय न्यायमूर्ति संतोष राय

1. श्री कमल कुमार सिंह, अधिवक्ता, अपीलार्थी संख्या 2 के लिए विद्वान न्याय मित्र सुश्री मयूरी मेहरोत्रा; राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. श्री पुरुषोत्तम मौर्य को सुना गया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया गया।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु हैं और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



2. दो अभियुक्त अपीलार्थियों ने वर्ष 1983 में वर्तमान अपील प्रस्तुत किया है, लेकिन इस अपील के लंबित रहने के दौरान उनमें से एक अर्थात् फूल सिंह की पहले ही मृत्यु हो चुकी है, अतः, तदनुसार अपील पहले ही उपशमित हो चुकी है। अपील केवल अपीलार्थी संख्या 2 अजय पाल सिंह के विरुद्ध शेष है।

3. धारा 374(2) द.प्र.सं. के अंतर्गत यह अपील द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, फतेहपुर द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 265 वर्ष 1981 (राज्य बनाम फूल सिंह और अन्य), जो थाना खागा, जिला फतेहपुर के मुकदमा अपराध संख्या 57 वर्ष 1979, धारा 307/34 भा.द.सं. से उत्पन्न हुआ है, में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 3.6.1983 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया गया है और धारा 307/34 भा.द.सं. के अंतर्गत सात वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है।

4. संक्षेप में, अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि 08.03.1979 को शाम लगभग 6.30 बजे, सूचनादाता लक्ष्मीकांत बाजपेयी ग्राम पौली बाजार से अपने घर लौट रहा था और, थाना खागा, जिला फतेहपुर के ग्राम अजई की सीमा के भीतर अपने चक के पास पहुंचने पर, अभियुक्त फूल सिंह और अजयपाल सिंह खेत में खड़ी मूंज की झाड़ियों से निकले। आरोप है कि फूल सिंह ने सूचनादाता पर लाठी से हमला किया, और उसके उकसाने पर, अपीलार्थी अजयपाल सिंह ने सूचनादाता को जान से मारने के आशय से उस पर पिस्तौल से गोली चलाई, जिससे उसके पेट के बाईं ओर आग्नेयास्त्र की चोट आई। उसकी चीखें सुनकर, पी.डब्ल्यू.-2 कृष्ण पाल सिंह और एक सुरेश सिंह, जो पौली बाजार से लौट रहे थे, घटनास्थल पर पहुंचे और अभियुक्तों को पकड़ने का प्रयास किया, लेकिन अपीलार्थी द्वारा धमकाए जाने पर, वे ऐसा नहीं कर सके, जिस पर अभियुक्त घटनास्थल से भाग गए। इसके बाद घायल को उसके बड़े भाई कमलेश बाबू और दादा राम बाबू द्वारा बैलगाड़ी में पुलिस स्टेशन ले जाया गया, जहां रात लगभग

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



8.00-8.30 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्रदर्श क-2) दर्ज की गई। उसका चिकित्सीय परीक्षण डॉ. डी.सी. राय (पी.डब्ल्यू.-1) द्वारा किया गया था, जिन्होंने अन्य बातों के साथ-साथ, ऊपरी पेट के बाईं ओर आग्नेयास्त्र की चोट और किसी कुंद हथियार से आई अन्य साधारण चोटें पाईं।

5. विवेचना पूरी होने पर, दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया, और धारा 307/34 भा.द.सं. के अंतर्गत विचारण का सामना करने के लिए उन्हें सत्र न्यायालय के सुपुर्द कर दिया गया। 03.03.1983 को आरोप विरचित किए गए, जिस पर अभियुक्तों ने अपराध स्वीकार नहीं किया। धारा 313 द.प्र.सं. के अंतर्गत अपने बयानों में, जो तब दर्ज किए गए थे, जब अपीलार्थी अजयपाल सिंह की आयु लगभग 24 वर्ष थी, दोनों अभियुक्तों ने अपने परिवार और सूचनादाता के दादा, राम बाबू के परिवार के बीच पूर्व-विद्यमान दुश्मनी और मुकदमेबाजी के कारण झूठा फंसाए जाने की दलील दिया।

6. अभियोजन पक्ष ने औपचारिक गवाहों के अतिरिक्त, डॉ. डी.सी. राय (पी.डब्ल्यू.-1), घायल सूचनादाता लक्ष्मीकांत (पी.डब्ल्यू.-2), और चश्मदीद गवाह कृष्ण पाल (पी.डब्ल्यू.-3) सहित पांच गवाहों का परीक्षण किया। चक्षु, चिकित्सीय और दस्तावेजी साक्ष्यों के मूल्यांकन पर, विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के प्रकरण को पूरी तरह से स्थापित पाया और निर्णय दिनांक 3.6.1983 के माध्यम से दोनों अभियुक्तों को धारा 307/34 भा.द.सं. के अंतर्गत दोषसिद्ध किया तथा प्रत्येक को सात वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई, जिसे वर्तमान अपील में चुनौती दी गई है।

7. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने दोषसिद्धि के प्रश्न पर गंभीरता से अपील पर जोर नहीं दिया है, क्योंकि दोषसिद्धि का निष्कर्ष घायल पी.डब्ल्यू.-2 लक्ष्मीकांत और चश्मदीद गवाह पी.डब्ल्यू.-3 कृष्ण पाल की समवर्ती गवाही पर आधारित है, जिसकी पुष्टि पी.डब्ल्यू.-1

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



डॉ. डी.सी. राय के चिकित्सीय साक्ष्य और तुरंत दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट से होती है। हालांकि, यह प्रस्तुत किया गया है कि दोनों अभियुक्तों को सौंपी गई भूमिका अलग-अलग थी: मृतक अपीलार्थी फूल सिंह केवल लाठी से लैस था और उसने केवल लाठी का उपयोग किया था, जबकि पिस्तौल से गोली चलाने का कृत्य, वह चोट जिसे जीवन के लिए खतरनाक कहा जाता है, विशेष रूप से और पूरी तरह से अपीलार्थी अजयपाल सिंह पर आरोपित है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि घटना के समय और धारा 313 द.प्र.सं. के अंतर्गत अपना बयान दर्ज कराते समय अपीलार्थी की आयु लगभग 24 वर्ष थी; वर्तमान में उसकी आयु लगभग 67 वर्ष है। घटना की तिथि से पैंतालीस वर्ष से अधिक समय बीत चुका है, और अपील स्वयं चार दशकों से अधिक समय से इस न्यायालय में लंबित है। यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलार्थी का कोई अन्य आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है, एक ऐसा तथ्य जिसका विद्वान ए.जी.ए. विवाद या खंडन नहीं करते हैं। इन संचयी विचारों पर, यह आग्रह किया गया है कि अपीलार्थी को मूल सजा के स्थान पर अपराधी परीवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के अंतर्गत सदाचरण की परीवीक्षा पर रिहाई का लाभ प्रदान किया जाए।

8. विद्वान ए.जी.ए. निर्देशों पर, उचित रूप से बताते हैं कि वर्तमान घटना से पूर्व या उसके बाद, अपीलार्थी का कोई आपराधिक इतिहास या पूर्व संलिप्तता इंगित नहीं की गई है या अभिलेख पर नहीं रखी गई है। हालांकि, वह विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए दोषसिद्धि के निष्कर्ष का समर्थन करते हैं, और प्रस्तुत करते हैं कि अपीलार्थी आग्नेयास्त्र से चोट कारित करने वाला था जो संभावित रूप से घातक थी और शरीर के एक महत्वपूर्ण हिस्से पर कारित की गई थी।

9. अभिलेख का परीक्षण करने के पश्चात, यह न्यायालय विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए दोषसिद्धि के निष्कर्ष में कोई दुर्बलता नहीं पाता है। घटना के स्थान और समय पर

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



घायल की उपस्थिति निर्विवाद है। पी.डब्ल्यू.-2 लक्ष्मीकांत, घायल, की गवाही स्वाभाविक, सुसंगत है और इसकी स्वतंत्र चशमदीद गवाह पी.डब्ल्यू.-3 कृष्ण पाल से पुष्टि होती है, जिसने आंशिक रूप से पक्षद्रोही घोषित होने के बावजूद, धारा 161 द.प्र.सं. के अंतर्गत और विवेचना अधिकारी के समक्ष दर्ज अपने बयान में स्वीकार किया कि अपीलार्थी अजयपाल सिंह ने पिस्तौल से लैस होकर सूचनादाता पर गोली चलाई थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट तत्परता से दर्ज की गई थी, घटना के लगभग दो घंटे के भीतर, तीन मील दूर एक पुलिस स्टेशन में, जिसमें अतिशयोक्ति या विचार-विमर्श की कोई गुंजाइश नहीं बची। पी.डब्ल्यू.-1 डॉ. डी.सी. राय का चिकित्सीय साक्ष्य चक्षु संस्करण की पुष्टि करता है, जो ऊपरी पेट के बाईं ओर एक आग्नेयास्त्र की चोट के साथ-साथ लाठी जैसे किसी कुंद हथियार से आई अन्य चोटों की पुष्टि करता है। उद्देश्य, अर्थात् परिवारों के बीच पूर्व-विद्यमान मुकदमेबाजी और दुर्भावना, विधिवत स्थापित होती है और निर्विवाद रहती है। तदनुसार, यह न्यायालय धारा 307/34 भा.द.सं. के अंतर्गत अपीलार्थी के विरुद्ध दर्ज दोषसिद्धि में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाता है।

10. हालांकि, व्यक्तिगत भूमिका के प्रश्न पर, साक्ष्य एक स्पष्ट सीमांकन का खुलासा करता है। दोनों चशमदीद गवाहों का यह विशिष्ट और सुसंगत मामला है कि वह अपीलार्थी अजयपाल सिंह था, और केवल अजयपाल सिंह था, जिसने सूचनादाता पर पिस्तौल से गोली चलाई थी; मृतक सह-अभियुक्त फूल सिंह की भूमिका सूचनादाता पर लाठी से हमला करने तक ही सीमित थी। इस प्रकार अपीलार्थी पर आग्नेयास्त्र की चोट का विशिष्ट और एकमात्र आरोप विचार करने के लिए एक प्रासंगिक परिस्थिति है, विशेष रूप से सजा के स्तर पर, अब जबकि अपील केवल उसी के संबंध में शेष है।

11. चोट रिपोर्ट (प्रदर्श क-1) और पी.डब्ल्यू.-1 डॉ. डी.सी. राय की गवाही के परिशीलन से पता चलता है कि सूचनादाता को केवल एक आग्नेयास्त्र की चोट लगी थी, जिसे ऊपरी पेट के बाईं

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



और लगभग 14 सेमी x 4 सेमी के क्षेत्र में 'कई अग्नेयास्त्र के घाव' के रूप में वर्णित किया गया है, जिसमें छर्रे के कई अलग-अलग निशान थे, जिनमें से प्रत्येक का व्यास लगभग 1/4 सेमी था, जिनमें कोई खून नहीं बह रहा था, कोई टैटू/कालापन नहीं था, और कोई निकास घाव नहीं था। शेष चोटें (संख्या 2 से 4) साधारण बताई गई थीं, जो लाठी जैसे किसी कुंद हथियार और रगड़ के कारण हुई थीं। घाव के चारों ओर कालेपन या टैटूइंग की अनुपस्थिति, छर्रे के बिखरे हुए छेदों के पैटर्न के साथ मिलकर, यह इंगित करती है कि गोली लगभग पांच से छह कदम की दूरी से चलाई गई थी, और करीब या पॉइंट-ब्लैंक रेंज से नहीं। यद्यपि चोट निस्संदेह गंभीर थी और शरीर के एक महत्वपूर्ण हिस्से पर स्थित थी, डॉक्टर ने यह राय दी थी कि यदि समय पर उपचार न मिलता, तो यह घातक सिद्ध हो सकती थी, यह तथ्य कि यह एक छोटी लेकिन गैर-संपर्क दूरी से चलाए गए देसी हथियार से छर्रे का एक ही प्रहार था, जिसके परिणामस्वरूप कई अलग-अलग बंदूक के घावों के बजाय एक मिश्रित घाव हुआ, एक ऐसी परिस्थिति है, जो दण्ड के प्रयोजन के लिए अपराध के आकलन पर प्रभाव डालती है, और किसी भी तरह से धारा 307/34 भा.द.सं. के अंतर्गत दोषसिद्धि की शुद्धता को कम नहीं करती है।

12. एक पहलू पर ध्यान देने की आवश्यकता है। यह इंगित किया गया है कि विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को सजा सुनाते समय जुर्माने की कोई सजा नहीं लगाई थी। धारा 307 भा.द.सं. कारावास के अतिरिक्त अपराधी को "जुर्माने के लिए दायी" बनाती है; इस प्रावधान के अंतर्गत जुर्माना लगाना कारावास की सजा का एक अनिवार्य सहगामी है। जहां भा.द.सं. का प्रावधान इस रूप में सजा निर्धारित करता है: "...कारावास से दंडित किया जाएगा... और जुर्माने के लिए भी दायी होगा", या "...कारावास और जुर्माने से...", वहां विचारण न्यायालय से जुर्माना लगाने की भी अपेक्षा की जाती है। जुर्माना लगाने में विफलता सजा देने में त्रुटि के समान है।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



इसलिए, धारा 307 भा.द.सं. के अंतर्गत जुर्माने की अनुपस्थिति अपने आप में दर्ज की गई सजा में एक दुर्बलता का गठन करती है। यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि न तो राज्य और न ही परिवादी ने धारा 377 द.प्र.सं. के अंतर्गत कोई अपील या पुनरीक्षण प्रस्तुत किया है जिसमें जुर्माना लगाकर सजा बढ़ाने की मांग की गई हो। केवल दोषसिद्ध व्यक्ति द्वारा धारा 374 द.प्र.सं. के अंतर्गत प्रस्तुत अपील में, यह न्यायालय, धारा 386 द.प्र.सं. के अंतर्गत अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, क्रॉस-अपील या बढ़ाने के नोटिस के अभाव में अपीलार्थी के प्रतिकूल सजा नहीं बढ़ा सकता है। इसलिए, इस बिंदु पर कोई आदेश आवश्यक नहीं है, और विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा को पूरी तरह से बरकरार रखा जाता है।

13. इस न्यायालय ने परिस्थितियों की समग्रता के प्रकाश में सजा के प्रश्न पर विचार किया है। यह घटना वर्ष 1979 की है; विचारण 1983 में समाप्त हुआ; और वर्तमान अपील इस न्यायालय के समक्ष चार दशकों से अधिक समय से लंबित है, जिसमें अपीलार्थी की कोई गलती नहीं है। अपीलार्थी, जिसकी आयु घटना के समय और धारा 313 द.प्र.सं. के अंतर्गत अपना बयान दर्ज कराते समय लगभग 24 वर्ष थी, वर्तमान में लगभग 67 वर्ष का है। विद्वान ए.जी.ए. ने निर्देशों पर उचित रूप से स्वीकार किया है कि वर्तमान घटना से पूर्व या बाद में अपीलार्थी का कोई आपराधिक पूर्ववृत्त न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है। पिस्तौल से गोली चलाने की विशिष्ट और एकमात्र भूमिका निस्संदेह अपीलार्थी की है; हालांकि, चोट की प्रकृति, एक एकल मिश्रित बंदूक का घाव जो लगभग पांच से छह कदम की दूरी से चलाए गए छरों के कारण हुआ, जिसमें कोई कालापन या टैटूइंग नहीं था, और जिसका सफलतापूर्वक उपचार किया गया जिसके बाद सूचनादाता को 20-21 दिनों के पश्चात छुट्टी दे दी गई, धारा 307 भा.द.सं. के अंतर्गत आने वाले अपराध की सबसे गंभीर प्रजातियों में से एक नहीं है।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



14. अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 और 5 को सुलभ संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत किया गया है:-

"4. सदाचरण की परिवीक्षा पर कतिपय अपराधियों को रिहा करने की न्यायालय की शक्ति.- (1) जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है जो मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है और जिस न्यायालय द्वारा वह व्यक्ति दोषी पाया गया है उसकी यह राय है कि, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र सहित वाद की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उसे सदाचरण की परिवीक्षा पर रिहा करना समीचीन है, तो उस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय उसे तुरंत कोई सजा देने के बजाय यह निर्देश दे सकता है कि उसे प्रतिभूओं के साथ या उनके बिना एक बंधपत्र प्रस्तुत करने पर रिहा किया जाए, ताकि वह तीन वर्ष से अनधिक की ऐसी अवधि के दौरान, जैसा न्यायालय निर्देश दे, बुलाए जाने पर उपस्थित हो सके और सजा प्राप्त कर सके, और इस बीच शांति बनाए रखे तथा सदाचरण का पालन करे:

बशर्ते कि न्यायालय किसी अपराधी की ऐसी रिहाई का निर्देश तब तक नहीं देगा जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि अपराधी या उसके प्रतिभू, यदि कोई हो, का उस स्थान पर कोई निश्चित निवास या नियमित व्यवसाय है, जहां न्यायालय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है या जिसमें अपराधी के उस अवधि के दौरान रहने की संभावना है जिसके लिए वह बंधपत्र निष्पादित करता है।

(2) उप-धारा (1) के अंतर्गत कोई आदेश देने से पूर्व, न्यायालय मामले के संबंध में संबंधित परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट, यदि कोई हो, पर विचार करेगा।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



(3) जब उप-धारा (1) के अंतर्गत कोई आदेश दिया जाता है, तो न्यायालय, यदि उसकी राय है कि अपराधी और जनता के हित में ऐसा करना समीचीन है, तो इसके अतिरिक्त एक पर्यवेक्षण आदेश पारित कर सकता है जिसमें यह निर्देश दिया गया हो कि अपराधी आदेश में नामित परिवीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण में ऐसी अवधि के दौरान रहेगा, जो एक वर्ष से कम नहीं होगी, जैसा कि उसमें विनिर्दिष्ट किया जाए, और ऐसे पर्यवेक्षण आदेश में ऐसी शर्तें लगा सकता है जो वह अपराधी के उचित पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक समझे।

(4) उप-धारा (3) के अंतर्गत पर्यवेक्षण आदेश देने वाला न्यायालय रिहा होने से पूर्व अपराधी से यह अपेक्षा करेगा कि वह ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट शर्तों और निवास, मादक पदार्थों से दूर रहने या किसी अन्य मामले के संबंध में ऐसी अतिरिक्त शर्तों का पालन करने के लिए प्रतिभुओं के साथ या उनके बिना एक बंधपत्र प्रस्तुत करे, जो न्यायालय, विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपराधी द्वारा उसी अपराध की पुनरावृत्ति या अन्य अपराधों के किए जाने को रोकने के लिए लगाना उचित समझे।

(5) उप-धारा (3) के अंतर्गत पर्यवेक्षण आदेश देने वाला न्यायालय अपराधी को आदेश के नियमों और शर्तों को समझाएगा और पर्यवेक्षण आदेश की एक प्रति प्रत्येक अपराधी, प्रतिभुओं, यदि कोई हों, और संबंधित परिवीक्षा अधिकारी को तत्काल प्रस्तुत करेगा।

5. रिहा किए गए अपराधियों से मुआवजा और लागत का भुगतान करने की अपेक्षा करने की न्यायालय की शक्ति.-(1) धारा 3 या धारा 4 के अंतर्गत किसी अपराधी की रिहाई का निर्देश देने वाला न्यायालय, यदि वह उचित समझे, तो उसी समय एक और आदेश दे सकता है जिसमें उसे भुगतान करने का निर्देश दिया गया हो-

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



(क) ऐसा मुआवजा जो न्यायालय अपराध किए जाने से किसी व्यक्ति को हुए नुकसान या चोट के लिए उचित समझे; और

(ख) कार्यवाहियों की ऐसी लागत जो न्यायालय उचित समझे।

(2) उप-धारा (1) के अंतर्गत भुगतान करने के लिए आदेशित राशि को संहिता की धारा 386 और 387 के प्रावधानों के अनुसार जुर्माने के रूप में वसूला जा सकता है।

(3) कोई सिविल न्यायालय उसी वाद से उत्पन्न किसी वाद की सुनवाई करते हुए, जिसके लिए अपराधी पर अभियोग चलाया जाता है, नुकसान का पंचाट देते समय उप-धारा (1) के अंतर्गत मुआवजे के रूप में भुगतान की गई या वसूल की गई किसी भी राशि को ध्यान में रखेगा।"

15. सीताराम पासवान और एक अन्य बनाम बिहार राज्य, (2005) 13 एस.सी.सी. 110 में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

"विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए, न्यायालय को वाद की परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र पर विचार करना होता है। अपराध की प्रकृति पर विचार करते समय, न्यायालय को अपराध की गंभीरता, पीड़िता पर अपराध के प्रभाव का यथार्थवादी दृष्टिकोण रखना चाहिए। अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अभियुक्त को उपलब्ध लाभ प्रावधानों में सन्निहित परिसीमा के अधीन है और "कर सकता है" शब्द स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र और मामले की समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 3 या 4 के अंतर्गत शक्तियों के प्रयोग में अपराधी को रिहा करना है या नहीं, इसका विवेक न्यायालय में निहित है। अपराधी परिवीक्षा

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत शक्तियां न्यायालय में तब निहित होती हैं जब कोई व्यक्ति किए गए अपराध का दोषी पाया जाता है, जो मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है। इस शक्ति का प्रयोग न्यायालयों द्वारा व्यक्ति को दोषी पाते समय किया जा सकता है और यदि न्यायालय समझता है कि वाद की परिस्थितियों, जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र शामिल है, को ध्यान में रखते हुए, अभियुक्त को लाभ दिया जाना चाहिए, तो न्यायालय द्वारा इस शक्ति का प्रयोग अपीलीय या पुनरीक्षण प्रक्रम पर भी किया जा सकता है और संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपील पर सुनवाई करते समय इस न्यायालय द्वारा भी किया जा सकता है।"

16. लखनलाल उर्फ लखन सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2021) 6 एस.सी.सी. 100 में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:-

"10. रतन लाल बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 444 में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने, 1958 के अधिनियम के प्रावधानों का परीक्षण करते हुए अभिनिर्धारित किया कि यदि अपराधी 21 वर्ष से कम आयु के हैं, तो न्यायालय को एक व्यादेश जारी किया जाता है कि उन्हें कारावास की सजा न दी जाए जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, 1958 के अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत उनसे निपटना वांछनीय नहीं है, लेकिन 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के संबंध में, न्यायालय को ऐसे अपराधियों को भर्त्सना के पश्चात या सदाचरण की परीक्षा पर रिहा करने का पूर्ण विवेक है। न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया: "

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



4. यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदार प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य अपराधी को दंडित करने की अपेक्षा उसमें सुधार लाना अधिक है। मोटे तौर पर, यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उस आयु से अधिक के अपराधियों के बीच, और मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध करने के दोषी अपराधियों और कम अपराध के दोषी अपराधियों के बीच अंतर करता है। जबकि 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के मामले में, अधिनियम के उपयुक्त प्रावधानों में निर्धारित शर्तों के अधीन, उन्हें भर्त्सना के बाद या सदाचरण की परीक्षा पर रिहा करने का पूर्ण विवेक न्यायालय को दिया गया है, 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को एक व्यादेश जारी किया जाता है कि उन्हें कारावास की सजा न दी जाए जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि, मामले की परिस्थितियों, जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधियों का चरित्र शामिल है, को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत उनसे निपटना वांछनीय नहीं है।'

11. इस न्यायालय ने जुगल किशोर प्रसाद बनाम बिहार राज्य, (1972) 2 एस.सी.सी. 633 में प्रावधान के औचित्य को युवा अपराधियों को परिपक्व आयु के कट्टर अपराधियों के साथ उनके जुड़ाव के परिणामस्वरूप हठी अपराधियों में परिवर्तित होने से रोकने के रूप में स्पष्ट किया, यदि युवा अपराधियों को जेल में कारावास की सजा सुनाई जाती है। न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



'6. अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958 में कतिपय श्रेणियों के अपराधियों को परिवीक्षा पर या उचित भर्त्सना के पश्चात रिहा करने और उससे जुड़े मामलों का उपबंध करने के विचार से अधिनियमित किया गया था। अधिनियम का उद्देश्य युवा अपराधियों को जेल में कारावास की सजा सुनाए जाने की स्थिति में परिपक्व आयु के कट्टर अपराधियों के साथ उनके जुड़ाव के परिणामस्वरूप हठी अपराधियों में परिवर्तित होने से रोकना है। उपरोक्त उद्देश्य दंडशास्त्र के क्षेत्र में वर्तमान प्रवृत्ति के अनुरूप है, जिसके अनुसार व्यक्तिगत अपराधियों में सुधार लाने का प्रयास किया जाना चाहिए और प्रतिशोधात्मक न्याय का सहारा नहीं लेना चाहिए। आधुनिक आपराधिक न्यायशास्त्र यह स्वीकार करता है कि कोई भी जन्मजात अपराधी नहीं होता है और कई अपराध सामाजिक-आर्थिक परिवेश की उपज होते हैं। यद्यपि कट्टर अपराधियों के लिए बहुत कुछ नहीं किया जा सकता है, फिर भी युवा अपराधियों में सुधार लाने पर काफी जोर दिया गया है जो बहुत गंभीर अपराधों के दोषी नहीं हैं और कट्टर अपराधियों के साथ उनके जुड़ाव को रोकने पर जोर दिया गया है। यह अधिनियम उपरोक्त उद्देश्य को वैधानिक मान्यता प्रदान करता है। इसलिए, यह उपबंध किया गया है कि युवा अपराधियों को कतिपय परिस्थितियों को छोड़कर जेल नहीं भेजा जाना चाहिए। हालांकि, अधिनियम के लाभ का आह्वान करने से पहले, यह दिखाना होगा कि दोषसिद्ध व्यक्ति भले ही 21 वर्ष से कम आयु का हो, आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध का दोषी नहीं है। यह अधिनियम की धारा 6 की भाषा से स्पष्ट है।'''

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



17. मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2017) 2 एस.सी.सी. 198 में, सर्वोच्च न्यायालय ने अपराधी परिवीक्षा अधिनियम के अंतर्गत न्यायालय की विवेकाधीन शक्ति के प्रयोग को निम्नानुसार दोहराया:-

"21. इस संबंध में, पी.ओ. अधिनियम के अंतर्गत न्यायालय में निहित विवेक का प्रयोग कैसे किया जाना चाहिए, इसे उजागर करने के लिए अन्य प्राधिकरणों का संदर्भ देना भी उचित है। राम प्रकाश बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (1972) 4 एस.सी.सी. 46 में, खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 के संदर्भ में पी.ओ. अधिनियम की धारा 4 से निपटते हुए, न्यायालय ने राय दी कि पी.ओ. अधिनियम की धारा 4 में प्रयुक्त 'कर सकता है' शब्द का अर्थ 'करना ही होगा' नहीं है। इसके विपरीत, जैसा कि उक्त प्राधिकरण में अभिनिर्धारित किया गया है, स्पष्ट शब्दों में यह स्पष्ट किया गया है कि पी.ओ. अधिनियम के प्रावधान 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उस आयु से अधिक के अपराधियों तथा मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध करने के दोषी अपराधियों और कम अपराध के दोषी अपराधियों के बीच अंतर करते हैं। तत्पश्चात, न्यायालय ने यह टिप्पणी करना जारी रखा है:

'7... जबकि 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के मामले में, उन्हें भर्त्सना के बाद या सदाचरण की परिवीक्षा पर रिहा करने का पूर्ण विवेक न्यायालय को दिया गया है, 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के मामले में न्यायालय को एक व्यादेश जारी किया जाता है कि उन्हें कारावास की सजा न दी जाए जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि मामले की परिस्थितियों, जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधियों का चरित्र शामिल है, को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत उनसे निपटना वांछनीय नहीं है। (रतन लाल

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 444 और रामजी मिसर बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 1088)'

यह ध्यान दिया जाना चाहिए, उक्त वाद में, खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1954 के अंतर्गत अपराध को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने पी.ओ. अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत लाभ प्रदान करने से इनकार कर दिया।

22. हमने इस बात पर जोर देने के लिए पूर्वोक्त प्राधिकरण का संदर्भ दिया है कि पी.ओ. अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करने से पूर्व न्यायालय को अपराध की प्रकृति और पी.ओ. अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत शामिल शर्तों को ध्यान में रखना होगा। जैसा कि दलबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2000) 5 एस.सी.सी. 82 में कहा गया है, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि संसद ने यह स्पष्ट कर दिया है कि केवल तभी जब न्यायालय यह राय बनाता है कि वाद की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सदाचरण के लिए परिवीक्षा पर दोषसिद्ध व्यक्ति को रिहा करना समीचीन है और उक्त राय बनाने में जिस परिस्थिति को दरकिनार नहीं किया जा सकता है वह 'अपराध की प्रकृति' है। न्यायालय ने आगे राय दिया है कि यद्यपि न्यायालय को यह तय करने का विवेक दिया गया है कि न्यायालय को ऐसी राय कब और कैसे बनानी चाहिए, फिर भी प्रावधान स्वयं पर्याप्त संकेत प्रदान करता है कि दोषसिद्ध व्यक्ति को सदाचरण की परिवीक्षा पर रिहा करना न्यायालय को समीचीन प्रतीत होना चाहिए। 'समीचीन' शब्द की व्याख्या करते हुए, न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



'9. ...संसद ने सोच-समझकर इस धारा में "समीचीन" शब्द का प्रयोग किया था, जिसका अर्थ "उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उपयुक्त और अनुकूल" है। ब्लैक की लॉ डिक्शनरी में "समीचीन" शब्द को पहले संदर्भित अन्य अर्थ के अलावा "एक विनिर्दिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयुक्त और उचित" के रूप में परिभाषित किया गया है। गुजरात राज्य बनाम जमनादास जी. पबरील, (1975) 1 एस.सी.सी. 138 में, इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने "समीचीन" शब्द पर विचार किया है। विद्वान न्यायाधीशों ने प्रस्तर 21 में इस प्रकार टिप्पणी किया है:

21.... पुनः, इस प्रावधान में प्रयुक्त "समीचीन" शब्द के कई अर्थ हैं। एक शब्दकोश के अर्थ में, "समीचीन" (विशेषण) का अर्थ है "दृष्टिकोण के अंत के लिए उपयुक्त और अनुकूल", "व्यावहारिक और कुशल"; "नीतिपरक"; "लाभदायक"; "उचित"; "मामले की परिस्थितियों के लिए उपयुक्त, सही और अनुकूल"। एक अन्य अर्थ में, इसका अर्थ है एक युक्ति जो "सिद्धांत के बजाय मात्र उपयोगिता द्वारा चित्रित की जाती है, जो सार्वभौमिक रूप से सही होने के बजाय विशेष लाभ के लिए अनुकूल है" (देखें वेबस्टर की न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी)।

10. तब यह अभिनिर्धारित किया गया था कि न्यायालय को प्रावधान के संदर्भ और उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उसके व्यापक आयाम में उक्त शब्द का अर्थ निकालना चाहिए। यहां पी.ओ. अधिनियम की धारा 4 में "समीचीन" शब्द का प्रयोग "अपराध की प्रकृति सहित वाद की परिस्थितियों..." को ध्यान में रखने के न्यायालय पर कर्तव्य डालने के संदर्भ में किया गया है। इसका अर्थ

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



यह है कि धारा 4 का सहारा तब लिया जा सकता है जब न्यायालय वाद की परिस्थितियों, विशेष रूप से अपराध की प्रकृति पर विचार करता है, और न्यायालय अपनी राय बनाता है कि यह एक विनिर्दिष्ट उद्देश्य को पूरा करने के लिए उपयुक्त और उचित है कि अपराधी को सदाचरण की परीक्षा पर रिहा किया जा सकता है।”

18. चेल्लम्मल और एक अन्य बनाम राज्य, पुलिस निरीक्षक द्वारा प्रतिनिधित्व, 2025 लाइव लॉ (एस.सी.) 461 में, जहां सत्र न्यायाधीश ने अपीलार्थियों (सास और पति) को धारा 304-बी भा.द.सं. के आरोप से दोषमुक्त कर दिया था लेकिन उन्हें धारा 498-ए के अंतर्गत दोषसिद्ध किया था, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:-

“विधिक स्थिति का सार प्रस्तुत करते हुए, यह कहा जा सकता है कि जबकि एक अपराधी अधिकार के रूप में परीक्षा प्रदान करने के आदेश की मांग नहीं कर सकता है, लेकिन परीक्षा प्रदान करके वैधानिक प्रावधानों द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य और परीक्षा अधिनियम की धारा 4 की प्रयोज्यता के बिंदु पर इस न्यायालय के कई निर्णयों पर ध्यान देने के बाद, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि, जब तक कि प्रयोज्यता को बाहर नहीं रखा जाता है, ऐसे मामले में जहां परीक्षा अधिनियम की धारा 4 की उप-धारा (1) में बताई गई परिस्थितियां आकर्षित होती हैं, न्यायालय के पास परीक्षा पर अपराधी की रिहाई पर विचार करने से चूकने का कोई विवेक नहीं है; इसके विपरीत, न्यायालय पर यह विचार करने का एक अनिवार्य कर्तव्य डाला गया है कि क्या उसके समक्ष मामला बताई गई परिस्थितियों के पूरा होने पर अपराधी को रिहा करने की आवश्यकता को उचित ठहराता है। परीक्षा प्रदान करने का प्रश्न किसी भी तरह से तय किया जा सकता है। इस स्थिति में, न्यायालय अपने विवेक से परीक्षा के लाभ

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



का विस्तार करने का निर्णय लेता है, तो वह परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट पर विचार करने पर ऐसी शर्तें लगा सकता है जो न्यायसंगत और उचित समझी जाएं। हालांकि, यदि उत्तर नकारात्मक है, तो न्यायालय के लिए केवल कारण दर्ज करना ही न्यायसंगत और उचित होगा।"

19. (i) अपीलार्थी की लगभग 67 वर्ष की उन्नत आयु, (ii) घटना की तिथि से पैंतालीस वर्षों से अधिक समय तक मामले का असाधारण रूप से लंबा लंबित रहना, (iii) किसी भी आपराधिक पूर्ववृत्त की अनुपस्थिति, जैसा कि विद्वान ए.जी.ए. द्वारा उचित रूप से स्वीकार किया गया है, और (iv) यह तथ्य कि अपीलार्थी को उसके जीवन के इस प्रक्रम पर, घटना के दशकों बाद जेल भेजना, सजा या निवारण का कोई सार्थक उद्देश्य पूरा नहीं करेगा, को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का विचार है कि यह अपीलार्थी को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के लाभकारी प्रावधानों का विस्तार करने के लिए एक उपयुक्त मामला है। अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है, जो इस न्यायालय को यह विश्वास दिलाए कि अपीलार्थी के पुनः ऐसे किसी आचरण में लिप्त होने की संभावना है, और इस विलंबित चरण पर कारावास के बजाय उसका सुधार, न्याय के हित की पूर्ति करेगा।

20. साथ ही, सूचनादाता लक्ष्मीकांत को पहुंचाई गई चोट की गंभीर प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, जिसे लगभग तीन सप्ताह तक अस्पताल में भर्ती रहना पड़ा और जिसका जीवन खतरे में पड़ गया था, यह उचित समझा जाता है कि अपीलार्थी को घायल व्यक्ति को मुआवजा देने का निर्देश दिया जाए, ताकि न्याय के उद्देश्यों को केवल औपचारिकता तक सीमित न कर दिया जाए।

21. अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

"अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



22. अपीलार्थी अजय पाल सिंह की धारा 307/34 भा.द.सं. के अंतर्गत दोषसिद्धि, जैसा कि द्वितीय अपर सत्र न्यायाधीश, फतेहपुर द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 265 वर्ष 1981 (राज्य बनाम फूल सिंह और अन्य), जो थाना खागा, जिला फतेहपुर के मुकदमा अपराध संख्या 57 वर्ष 1979, धारा 307/34 भा.द.सं. से उत्पन्न हुआ है, में दर्ज की गई है, को एतद्वारा बरकरार रखा और पुष्ट किया जाता है। हालांकि, उसे दी गई कारावास की सजा को अपास्त किया जाता है।

23. अभियुक्त-अपीलार्थी अजय पाल सिंह को अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के अंतर्गत निम्नलिखित शर्तों के अधीन परीक्षा पर रिहा किया जाए:-

(i) अभियुक्त-अपीलार्थी संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए एक वर्ष की अवधि के लिए 50,000/- रुपये (पचास हजार रुपये) की राशि का एक 'नया' व्यक्तिगत बंधपत्र तथा समान राशि का एक प्रतिभू इस वचन के साथ निष्पादित करेगा कि वह शांति और सदाचरण बनाए रखेगा और किसी भी आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं होगा।

(ii) अपराधी परीक्षा अधिनियम की धारा 5 का प्रयोग करते हुए, अपीलार्थी आज से एक महीने की अवधि के भीतर घायल लक्ष्मीकांत को 40,000/- रुपये (चालीस हजार रुपये) के मुआवजे का भुगतान करेगा। घायल/पीड़ित की मृत्यु के मामले में, अपीलार्थी इसे उसके विधिक प्रतिनिधियों को भुगतान करेगा।

(iii) अपीलार्थी निर्धारित अवधि के भीतर संबंधित विचारण न्यायालय के समक्ष उपरोक्त मुआवजा राशि जमा करेगा और विचारण न्यायालय, नोटिस और सत्यापन के पश्चात, बैंक खातों के माध्यम से उपरोक्त राशि पीड़ित/उसके विधिक वारिसों को वितरित करेगा।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



(iv) उपरोक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में, अभियुक्त-अपीलार्थी मूल सजा काटने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा भुगतने के लिए दायी होगा।

24. विचारण न्यायालय अनुपालन सुनिश्चित करेगा और पर्यवेक्षण के लिए परिवीक्षा अधिकारी से रिपोर्ट मांगेगा।

25. अपीलार्थी को अपेक्षित बंधपत्र प्रस्तुत करने के लिए आज से दो सप्ताह के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है। व्यतिक्रम की स्थिति में, विचारण न्यायालय दंडात्मक प्रक्रिया जारी करने सहित विधि के अनुसार आगे बढ़ने के लिए स्वतंत्र होगा।

26. अनुपालन के लिए इस निर्णय की एक प्रति विचारण न्यायालय के अभिलेख के साथ तत्काल संबंधित विचारण न्यायालय को प्रेषित की जाए।

27. रजिस्ट्रार (अनुपालन) को भी निर्देश दिया जाता है कि वे अनुपालन के लिए जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फतेहपुर के माध्यम से संबंधित विचारण न्यायालय को फैक्स/ई-मेल द्वारा तीन दिनों के भीतर इस आदेश की एक प्रति तामील कराएं।

28. विद्वान न्याय मित्र सुश्री मयूरी मेहरोत्रा को उनके पारिश्रमिक का भुगतान, जो इस न्यायालय द्वारा आदेश दिनांक 12.5.2026 के माध्यम से तय किया गया है, आज से दो सप्ताह की अवधि के भीतर किया जाए।

(न्यायमूर्ति संतोष राय)

14 अगस्त, 2026

आर.ए.

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”